स्थानीय सरकार की ताकत बढ़ाने वाला फैसला....!

- राजीव श्रीवास्तव

मध्यप्रदेश में महापौर का चुनाव अब जनता नहीं, चुने हुए पार्षद (स्थानीय सरकार के सबसे अहम अंग) करेंगे। मध्यप्रदेश की कमलनाथ सरकार ने कोई 20 साल पुरानी व्यवस्था (महापौर का चुनाव अब जनता नहीं, चुने हुए पार्षद करेंगे) को पुनः नगरीय निकायों में लागू कर दिया है। सरकार का बेहद अहम फैसला कतिपय राजनीतिक दलों को रास नहीं आया है। इस निर्णय पर खूब 'खुरपैंच'हो रही है। तमाम सवाल भी खडे किये जा रहे हैं। चुनी हुई 'सरकार'के अस्तित्व से भी सरकार के निर्णय को जोड़ा जा रहा है।

तमाम सवाल अपनी जगह हैं। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि चुने हुए प्रतिनिधियों का महत्व कितनी तेजी से घटा है। प्रत्येक दल सत्ता के विकेन्द्रीकरण, चहुंमुखी और संतुलित विकास की दुहाई जरूर देता है, लेकिन जब इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम उठाया जाता है तो उसकी सराहना करने की बजाय ऐसा राजनीतिक दल या उसके रणनीतिकार, फैसले के महत्व का पक्ष लेने की बजाय राजनीतिक रोटियां सेकने में जुट जाते हैं।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पार्षद से लेकर विधायक और विधायक से लेकर सांसद तक की यह शिकायत आम है कि उनकी सुनी नहीं जाती। अब तो मंत्री भी यह शिकायत करते हैं कि नौकरशाह और मुख्यमंत्री उनकी नहीं सुनते हैं। हरेक राजनीतिक दल में आंतरिक आजादी है। उचित मंच पर शिकायत करने का अधिकार प्रत्येक राजनेता को है। जब अवसर आता है तो ऐसे चुने हुए जनप्रतिनिधि कि पार्षद, विधायक, मंत्री, सांसद और केन्द्रीय मंत्री अपना 'दर्द'बयां करने में पीछे नहीं रहते।

विधायिका और कार्यपालिका में टकराव के किस्से आये दिन मीडिया की सुर्खियां बनते हैं। ऐसे में चुने हुए प्रतिनिधियों या यूं कहें - एक निर्धारित संख्या की नुमाइंदगी करने वाले निर्वाचित प्रतिनिधि को उसका वाजिब हक अवश्य मिलना चाहिये। वह इतना ताकतवर अवश्य हो कि वोट देने वाले के हितों की अधिकतम रक्षा कर सके। इतनी आजादी उसे हर हाल में हो - ताकि चाहकर भी कोई जनहित के कार्यों में अड़ंगा ना लगा पाये।

मध्यप्रदेश में 16 नगर निगम, 98 नगर पालिकाएं और 264 नगर पंचायतें हैं। यदि पंचायतों पर भी नजर डाली जाये तो 52 जिला पंचायतें, 313 जनपद पंचायतें, 22856 ग्राम पंचायतें एव सरपंच और 3 लाख 62 हजार 523 पंचों के पद हैं। बेशक शुरूआत महापौर का निर्वाचन सीधे जनता के जरिये समाप्त करने की हुई है। यह कदम मील का पत्थर माना जाना चाहिए। असल में फैसले के बाद महापौर जब पार्षदों के माध्यम से चुनकर आयेगा तो उसकी जवाबदेही पुनः निर्वाचित पार्षदों के प्रति बढ़ेगी। मनमानी वह नहीं कर पायेगा। सबको साथ लेकर चलना उसकी मजबूरी होगा।

पांच सालों का कार्यकाल स्थानीय सरकार का होता है। जनता के माध्यम से चुने जाने के बाद महापौर को मालूम होता था कि अब पांच सालों तक महापौर की कुर्सी से कोई चाहकर भी उसे हटा नहीं पायेगा। पार्षद चुनेंगे तो मनमानी या दादागिरी करने पर महापौर के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव का हथियार पार्षदों के हाथों में होगा। महापौर को सीधे-सीधे इसका भय होगा और वह मनमानी नहीं कर पायेंगे।

महापौर का चुनाव सीधे होने के बाद यह भी देखने में आने लगा था कि राजनीतिक चश्मे के अलावा चुना हुआ महापौर - शहर के चहुंमुखी विकास में बाधक या पार्टी बन जाने में भी कोई कोर और कसर नहीं छोड़ा करते थे। ऐसा नहीं है कि पार्षदों के जरिये चुने जाने के बाद स्थानीय सरकार में 'राम राज्य'आ जायेगा। बेशक - 'राम राज्य'नहीं आयेगा, तो मनमानी की इंतेहा भी कोई नहीं कर पायेगा। कुल मिलाकर पार्षदों की ताकत बढ़ने के साथ-साथ पहले (20 साल पुराने मध्यप्रदेश) की तरह बेशक पार्षद की पूछपरख पुनः बढ़ जायेगी। पार्षद के क्षेत्र के विकास में बाधक होने वाले तत्व कम हो जायेंगे।

मध्यप्रदेश की कुल 16 नगर निगमों में अभी सभी 16 में भाजपा के चुने हुए महापौर हैं। इन निगमों में पार्षदों की संख्या एक हजार के आसपास है। इन पार्षदों में अधिकांश संख्या भाजपा के पार्षदों की है। कांग्रेस के पार्षद भी अच्छी संख्या में है। स्वतंत्र तौर पर जीतकर आये पार्षदों की संख्या भी दो अंकों में है। भाजपा के हों अथवा कांग्रेस या फिर निर्दलीय हरेक पार्षद उसकी ना सुने जाने की शिकायत एक सुर में करता है। क्षेत्र के विकास में अनदेखी और पक्षपात की शिकायतें भी प्रत्येक दल का पार्षद करता है।

महापौर को जवाबदेह बनाने के लिए पार्षदों के माध्यम से इन्हें चुने जाने का फैसला वास्तव में किसे लाभ देगा? किसकी ताकत बढ़ायेगा? सरकार के निर्णय (महापौर का चुनाव अब जनता के बजाय पार्षद करेंगे) पर सवाल खड़ा करने वालों को ही आगे आकर बताना चाहिए। सरकार यदि पार्षद पद को ताकतवर बनाने का प्रयास कर रही है तो इसमें राजनीतिक दलों के आका इतनी बोमा-बोम आखिर क्यों कर रहे हैं - इस बारे में उन्हें खुद होकर आत्ममंथन करना चाहिए। जब विधायक, सांसद और मंत्री की कोई बिसात नहीं बची है तो ऐसे में चुनी हुई सरकार की पहली सीढ़ी को मजबूती प्रदान करने के निर्णय पर आखिर वही लोग सवाल क्यों उठा रहे हैं, जो चुने हुए प्रतिनिधियों को ज्यादा अधिकार संपन्न बनाने की बात करते हैं - पर भी एक बार नये सिरे से विचार होना आवश्यक है।

देश में मध्यप्रदेश समेत पांच ऐसे सूबे थे, जहां महापौर का चुनाव सीधे जनता किया करती थी। मध्यप्रदेश ने इस निर्णय को उलट दिया है। छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और झारखंड मेयर का चुनाव सीधे कराते हैं। झारखंड में तो निकाय अध्यक्ष का चुनाव भी जनता ही करती है। मप्र द्वारा मेयर का इलेक्शन पार्षदों द्वारा कराने के निर्णय के बाद सीधा चुनाव कराने वाले सूबों की संख्या घटकर अब चार रह गई है। ऐसा कतई नहीं है कि जो चार राज्य मेयर का चुनाव सीधे करा रहे हैं, वहां के पार्षदों को इसका दर्द नहीं है। दर्द है। मगर राजनीतिक मजबूरियों के चलते वे बोल नहीं पा रहे हैं। अपनी पीढ़ा का इजहार नहीं कर पा रहे हैं। देर-सबेर इन सूबों को भी अपने निर्णय पर (मेयर का चुनाव सीधे जनता के करने से होने वाली कठिनाईयों को लेकर) अवश्य विचार करना पड़ेगा।

सबसे पहले हिमाचल ने खींचे थे पीछे कदम :

हिमाचल प्रदेश ने मेयर और डिप्टी मेयर का चुनाव जनता के वोट से कराये जाने का फैसला सबसे पहले पलटा था। साल 2012 के चुनाव में इस सूबे में बेहद विचित्र स्थिति बनी थी। कुल 26 पार्षदों वाली शिमला नगर निकाय में भाजपा के 12 और कांग्रेस के 10 पार्षद जीतकर आये थे। चार सीटें दीगर दलों और निर्दलियों के खातों में चली गई थीं। मेयर और डिप्टी मेयर का चुनाव कम्युनिस्ट पार्टी ने जीत लिया था। भाकपा की जीत ने भाजपा और कांग्रेस सकते में आ गई थी। बाद में हिमाचल सरकार ने नियम बदल दिया था। मेयर और डिप्टी मेयर का चुनाव सीधे कराने की जगह पार्षदों के माध्यम से कराया जाने लगा था। हिमाचल प्रदेश सरकार का निर्णय गलत नहीं था। जो हालात बने थे, उसके मद्देनजर सरकार ने एक तरह से ठीक निर्णय लिया। क्योंकि सरकार रूपी 'गाड़ी'तभी सही ढंग से चल सकती है, जब उसका हरेक 'पुर्जा' एकजई चले। वैसे भी अलग-अलग 'पुर्जे'वाली सरकार रूपी इस तरह की 'गाड़ियां' चल तो जाती हैं, लेकिन बहुत दिनों तक चल पाना कतई मुमकिन नहीं होता। ऐसी 'गाड़ियां' बीच रास्ते में ही अक्सर दम तोड़ दिया करती हैं। दौड़ तो कतई नहीं पातीं।

आशंका निर्मूल साबित होने के आसार ज्यादा :

सरकार के निर्णय का विरोध करते हुए कतिपय राजनीतिज्ञों ने आशंका जताई है कि यह फैसला महापौर के चुनाव के समय पार्षदों की खरीद-फरोख्त को बढ़ावा देगा। हो सकता है कि छिटपुट ऐसे हालात बनें। ऐसे हालात (खरीद-फरोख्त की नौबत आने वाले) बिलकुल नहीं बनेंगे इससे इनकार नहीं किया जा सकता। महापौर - महज और महज पार्षदों की कथित खरीद-फरोख्त से ही बनेगा, ऐसे हालात पूरी तौर पर बनने वाले कदापि नहीं होंगे। कुल जमा -

सरकार के बहेद अहम निर्णय से पार्षदों का वजन बढ़ेगा। पूछपरख बढ़ेगी। हरेक वार्ड का चहुंमुखी विकास होने का मार्ग ज्यादा बेहतर तरीके से प्रशस्त होगा - इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है।

फैसले को राजनीतिक चश्मा उतारकर देखा जायेगा तो विरोध करने वाले भी एकसुर में यही कहने को मजबूर होंगे, 'निर्णय बेहतर और पार्षदों का मान-सम्मान बढ़ाने वाला है।' (प्रस्तुति: मनुज फीचर सर्विस)

नोट: मनुज फीचर सर्विस में छपे लेखों के विचार लेखक के अपने हैं। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। मनुज फीचर सर्विस का उल्लेख अवश्य करें।